

* श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गी जयतः *

* स वं पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोजेक्ष		* नोरपाद्येन्द्रियं विभूषि अभ्यं एव लिंगं ब्रह्मं विभूषि
धर्मः स्वतन्त्रितः पुसां विष्वकर्मास्त कथामुः यः		
* अहैतुक्यप्रतिहता यथात्मासुप्रसीदति ॥		

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । | सब धर्मों का थेषु रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षण की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ | किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, थम व्यर्थं सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष १० } गौराब्द ४७८, मास—माघव २६, वार-गम्भोदेशायी { संख्या ६
बुधवार, २६ माघ, समवत् २०२१, १२ फरवरी १९६५ }

श्रीप्रार्थनाश्रय-चतुर्दशकम्

[श्रीज-रघुनाथदास-गोस्वामि-विरचितम्]

श्रीगिरिधारिणे नमः

अलं दीपावल्यां विपुलरतिगोवद्दन्न-गिरि जनन्या संपूज्योऽज्ञवलित-महिलोदृगीतकुतुकैः ।

निशादावैः पृष्ठे रचित-करलक्ष्मधियमसो वहन् मेषध्वानैः कलय गिरिभृत् खेलयति गाः ॥१॥

पुरो गोभिः सादृ व्रजनृपतिमूर्या व्रजजना व्रजन्त्येषां पश्चात्प्रिक्षिल-महिलाभिन्नं जनुगाः ।

पशो भित्रपातैः कुतविविध-नर्म व्रजशशी छलैः पश्यन् राधा सहत्ररि परिक्रामति गिरिम् ॥२॥

उद्वत्त-काश्यामृतंवितरणीर्जीवित-जगद्-युवद्वन्द्वं गम्धंगुणसुमनसां वासितजनम् ।

कृपाच्चेन्मध्येवं किरति न तदा त्वं कुह तथा यथा मे श्रीकुण्डे सखि सकलमङ्गं निवसति ॥३॥

उद्वामनम्-रसकेलि-विनिमिताङ्गं, राधामुकुन्द-युगलं ललिता-विशाले ।

गोराङ्गचन्द्रभिह रूपयुगं न पश्यन्, हा वेदनाः कति सहे स्फुट रे ललाट ॥४॥

व्रजपतिहृत-पञ्चनिन्दि-नन्दीशवरोद्यत्-परिषदि वदनान्तः स्मेरतां राधिकायाः ।

रचयति हरिरारादृहिवभङ्गे न नदां रविरिव कमतिन्याः पुण्यकान्ति करेण ॥५॥

उपगिरि गिरिधर्तुः सुस्मिते वक्त्रविस्वे, भ्रमति निभृत-राधानेत्रभञ्जीच्छलेन ।
 अतिरूपित-चकोरी-लालसेवाम्बुदस्यो-परि शशिनि सुधारुपे मध्य आकाशदेशम् ॥६॥
 द्युतिजित-रति-गौरी-हमा-रमा-सत्यभामा, व्रजपुर-वरनारीवृन्द-चन्द्रावलीकाम् ।
 गिरिभृत इह राधां तन्वतो मणितां त-तदुपकरणमग्रे कि निवास्ये क्रमेण ॥७॥
 कनकरचित-कुंभद्वन्द्व-विन्यासभञ्जी-रचिहर-कुचयुगमं सौरभोच्छूनमस्याः ।
 सपुलकमथ गन्धैश्चत्रितं कत्तुमिच्छो-गिरिभृत इह हस्ते हन्त दास्ये कदा तान् ? ॥८॥
 कृष्णस्यांसे विनिहितभुजावलिलहत्कुलरोमा, रामा केयं कलयतिवरा भुधरारण्य-लक्ष्मीम् ।
 जातं जातं प्रणयन्दुला व्याकुला रामपूरे, रन्या कास्ते सहचरि विना राधिकामीहसी वा ? ॥९॥
 अपूर्व-प्रेमावधेः परिमलपयः केननिवर्तेः, सदा यो जीवानुर्यमिह कृपयासिच्छवतुलग् ।
 इदानीं दुर्देवात् प्रतिपदविपद्माववलितो निरालम्बः सोऽयं कमिह तमृते यातु शरणम् ? ॥१०॥
 शून्यायते महागोष्ठ गिरीन्द्रोऽजगरायते । व्याघ्रतुंडायते कुण्डं जीवातुरहितस्य मे ॥११॥
 न पतति यदि देहस्तेन कि तस्य दोषः, स किल कुलिशसारेयंदिवाना व्यधायि ।
 अयमपि परहेतुर्गढ़ितकर्णे हृष्टः, प्रकटकदनभारं को वहत्कन्यया वा ? ॥१२॥
 गिरिवरतट-कुञ्जे मञ्जुवृन्दावनेशा-सरसि च रचयन् श्रीराधिका-कृष्णं कीर्तिम् ।
 भृतरति रसरीयं संस्तरस्तापादाक्षं, लज-दधि कलमहन् सर्वकालं वसामि ॥१३॥
 वसता गारवर कुञ्जं, लपतः श्रीराधिकेऽनु कुण्ठेति ।
 धयतो व्रज-दधितकं, नाथ सदा मे दिनानि गच्छन्तु ॥१४॥

अनुवाद—

दीपावलीके दिन श्रीमती यशोदादेवी अतिशय-जगमगाने हुए अलंकारोंसे अलंकृत हुई गोपमहि-लालोंके सहित उत्तम गीत-कौतुक और भक्तिके साथ श्रीगोवद्धनका पूजा करके हरिद्रा-द्रव ढारा। अपने हाथका छाप जिनकी पीठके ऊपर लगा दिया है, (हे रूपमञ्जरि-सखि !) देखो तो जरा, वे गिरिधारी श्रीकृष्ण जननीहारा प्रदृत उस चिह्नको पीठ पर धारण करते हुए मेघ-गंभीर निनादसे गौवोंको कीदा करा रहे हैं, ॥१॥

गोपमूहके साथ-साथ आगे-आगे नन्दराज और दूसरे-दूसरे व्रजवासीगण गमन कर रहे हैं। उनके पीछे-पीछे निखिल व्रज-महिलाओंके साथ व्रजेश्वरी यशोदादेवी चल रही हैं। तदनन्तर व्रजशशी श्रीकृष्ण अपनी मिश्र-मण्डलीके साथ विविध प्रकार

के कौतुक करते हुए छलसे श्रीमती राधिकाका अब-लोकन करते-करते श्रीगोवद्धनकी परिक्रमा कर रहे हैं। तनिक देखो तो सखि ! ॥२॥

छलकरे हुए कारुण्यामृतका वितरण करते हुए जो जगतको संजीवित कर रहे हैं एवं अपने गुणरूपी पुष्पसमूहके सुगन्धसे सबको आमोदित और तुम कर रहे हैं, वे श्रीश्रीराधाकृष्ण यदि मुझ पर कृपा न करें तो हे सखि ! तुम ऐसा करो कि मेरा यह समस्त शरीर श्री (राधा) कुण्डमें निवास करें, अर्थात् तुम आङ्गा दो, मैं श्रीकुण्डमें फूज मरूँ ॥३॥

अहो, अतिशय परिहास-रसकीदासे ही जिनके अङ्ग रचित हुए हैं, हाय ! ऐसे राधाकृष्ण-युगल, ललिता-विशाखा, गौराङ्गचन्द्र एवं रूप-सनातन—

इन सबका अब ब्रजमें दर्शन न पाकर और कितनी वेदना सकूँगी, और ललाट, तू विदीर्ण हो जा ॥४॥

सखि ! देखो, जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे कमलिनीकी कान्तिको प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार ब्रजपति नन्दमहाराज द्वारा सम्पादित पर्वके उपलद्धयमें नन्दीश्वर (नन्दगाँव) के निवासियोंकी सभामें श्रीकृष्ण दूरसे नेत्रभंगी द्वारा श्रीराधिकाके मुख-मशड़ल पर मन्दहास्यकी रचना कर रहे हैं ॥५॥

हे सखि ! जिस प्रकार आकाशमें मेघोंके ऊपर सुपार्ण चन्द्रमण्डलमें अति तुष्णातुरा चकोरीकी लालमा भ्रमण करती है, उसी प्रकार गिरिराज गोवद्धुनके समीप गिरीधारी कृष्णके सुमधुर हास्य-पूर्ण बदन विस्वपर श्रीराधिकाजी नेत्रभंगाच्छलसे प्रलभ्यरूपमें भ्रमण कर रही हैं ॥६॥

जिनकी आङ्ग-कान्तिने कामदेवकी पत्नी रति, गौरी, पृथ्वी, लक्ष्मी, सत्यभामा, ब्रजकी उत्तमसे उत्तम रमणियों और चन्द्रावली तकको जीत लिया है, ऐसी श्रीमती राधिकाको जो इस ब्रजमें अलंकृत कर उस कान्तिका और भी विज्ञार कर रहे हैं, वन गिरिधारी श्रीकृष्णके समीप मैं कब तकालोचित उपहार सामग्री निवेदन करूँगी ? ॥७॥

अहो ! स्वर्ण-निर्मित युगल-कुम्भकी विन्यास-भङ्गीशोभाको भी पराजित करनेवाले, सौरभपुष्ट एवं पुलकित श्रीराधाके कुचयुगलको जो गन्ध-द्रव्य द्वारा चिह्नित करनेके लिये इच्छुक हैं, हाय ! उन गिरिधारी श्रीकृष्णके हाथोंमें मैं कब गन्ध-द्रव्यसमूह अर्पण करूँगी ? ॥८॥

अरी सखि ! श्रीकृष्णके कन्धों पर अपनी भुज-लताको अर्पित कर अति पुलकित होकर बड़े प्रेम से गोवद्धुनके समीपवर्ती बनकी शोभा दर्शन करने वाली यह रमणी कौन है ? अहो ! समझ गयी, वह प्रणय चढ़ाता, व्याकुला एवं अनुराग-परिपूर्ण श्रीराधिकाके अतिरिक्त ऐसी कौन होगी ? ॥९॥

मेरे जीवनोपाय-स्वरूप श्रीरूपगोस्वामीने अपूर्व प्रेम समुद्रके निर्मल जल और फेनसमूह द्वारा सदा-सर्वदा मुझ जैसे जनको जिस प्रकार सिंक किया है इसकी कोई तुलना नहीं है, अब दुर्देववशतः ज्ञान-ज्ञानमें विपद्मरूप दावानल-प्रस्त होनेके कारण मैं आश्रयरहित हो गया हूँ। अतएव पूर्व-कृपासिंक उस मुझ जैसा व्यक्ति अब उक्त श्रीरूपगोस्वामीके अतिरिक्त और किसका आश्रय लेगा ? ॥१०॥

जीवनोपाय स्वरूप श्रीरूपगोस्वामीके विल्लुइनेसे मुझे यह महागोष्ठ सुना सा लगता है, गिरिराज गोवद्धुन श्रीगरकी भाँति प्रतीत होते हैं और श्रीराधाकुण्ड व्याघ्र-तुण्ड (व्याघ्र मुख) की तरह दीखते हैं ॥११॥

यदि मेरा शरीर भृगुपात (पर्वतके ऊपरसे गिरने) से पतित नहीं होता अर्थात् प्राणशून्य नहीं हो जाता, तो इसमें शरीरका क्या दोष है ? क्योंकि इस शरीरको विधाताने ही चञ्चलारके द्वारा (इच्छा कठोर) बनाया है, अथवा मैं प्रगाढ़ तर्कके द्वारा अत्यन्त विचार करनेपर इसका एक और भी दूसरा कारण यह भी देख रहा हूँ कि मेरे सिवा ऐसा दुःखभार कौन सह सकेगा ? ॥१२॥

(मेरी तो यही अभिलाषा है कि) मैं श्रीराधा-कृष्णकी सुविमल कीर्तिका प्रचार करते-करते, श्री-राधाकृष्णके सानुगग रमणीय चरणारविन्दका न्मरण करते-करते नथा वृन्दावनके फल और दधि आदिका भोजन करते-करते श्रीगोवद्धुन-तटवर्ती-कुख्यमें श्रीवृन्दावनेश्वरीके सरोवर अर्थात् श्रीराधा-कुण्डके तट पर ही सब समय निवास करूँ ॥१३॥

हे नाथ ! हे रूप गोस्वामिन् ! श्रीगोवद्धुन-कुख्यमें निवास करते-करते, आगे 'हे राधिके !' पश्चात् 'हे कृष्ण !'— इन दोनों नामोंका चर्चारण करते-करते तथा ब्रजका दही और छाछ पान करते-करते मेरे जीवनके अवशिष्ट दिन ध्यतीत हों ॥१४॥

शुद्धभक्ति-धर्ममें प्रवेशके लिये कुछ आवश्यक बातें

शुद्ध भक्ति धर्ममें प्रवेश करनेके लिये सबैप्रथम सद्गुरुका आश्रय करना चाहिये । आलसी, मलिन, वृथा कष्ट सहनेवाला, अहंकारी कृपण, दरिद्र, रोगी, कोधी, विषयासक्त, लोभी, परछिद्राघ्नवेषी, मत्सर, ठग, कठोर बचन बोलनेवाला, अन्यायरूपसे अर्थ-संग्रह करनेवाला, पराई खीमें आसक्त, भक्त-विद्वेषी, अपनेको पंढितमान कर अहंकार करनेवाला, दूसरों का दोष प्रकाश करनेवाला, दूसरोंको सतानेवाला, भोजन करनेवाला, निर्दयी, दुरात्मा, निन्दित पापीष्ठ, नराधम, कुकर्मी और श्रीगुरुदेवके शासनको सहनेमें असमर्थ व्यक्तिको श्रीगुरुदेव अपनी सेवा नहीं प्रदान करते । इसलिये उपर्युक्त दुर्गणोंसे बचना चाहिये ।

गुरु सेवकके लिये बहुतसे सेवा कार्य होने पर भी साधारणः उनकी साज्जात सेवाके सम्बन्धमें कुछेकका चलेक्ष्य किया जा रहा है—प्रतिदिन श्रीगुरुदेवके लिये जल लाना, श्रीगुरुका शरीर मार्जन, चन्दन-लेपन, उनका घर साफ करना, कपड़े साफ करना, उनके प्रिय और हितकर कर्मोंका अगुष्ठान करना, गुरुके गुरुके प्रति गुरुकी भाँति ध्यवहार करना चाहिये । गुरुकी आङ्गा लेकर मातापिताके साथ बोलना चाहिये । गुरुदेवका दर्शन करते ही भूमिष्ठ होकर दण्डवत प्रणाम करना चाहिये । तन-मन-बचन-प्राण-धनके द्वारा गुरुके प्रिय कार्योंको करना चाहिये । श्रीकृष्णके चरणकमलोंका आश्रय करनेके लिये अप्राकृत दीङ्गा प्रहण करनी चाहिये । श्रीगुरुदेवको भगवत् बुद्धिसे प्रणाम करना चाहिये । अपनी सब सम्पत्ति यहाँ तक कि अपनी देह तक

दक्षिणाके रूपमें गुरुदेवको समर्पण कर देना चाहिये । सेव्य भगवान् कृष्णको गुरुके शरीरमें अवस्थित जानना चाहिये । एकादशी, जन्माष्टमी, रामनवमी, फालगुनी पूर्णिमा (महाप्रभुका जन्म दिवस) आदि हरिवासरोंमें उपवास करना चाहिये ।

गुरुदेवकी साज्जात् सेवाके समय न करने योग्य कुछ कार्य

गुरुके निकट पैर पसारना, उनकी आङ्गाके बिना कहीं जाना, लम्बी-चौड़ी बातें बनाना, अहंकारयुक्त और उच्च बचन, गुरुका नाम उच्चारण, गुरुकी चाल, उनकी बोली और क्रियाका अनुकरण नहीं करना चाहिये । गुरुके निकट पृथक् पूजा नहीं करनी चाहिये । गुरुदेव भी हमारे जैसे ही हैं—ऐसा अहंकार प्रकाश नहीं करना चाहिये । गुरुदेवको कभी किसी प्रकारकी आङ्गा न देनी चाहिये और न उनकी किसी आङ्गाका उलंघन ही करना चाहिये । गुरुको अर्पण किये बिना कोई भी चौज प्रहण नहीं करना चाहिये । गुरुके लिये रखी हुई किसी चीजको स्थाना नहीं चाहिये । उनके आगमन करने पर उठ कर खड़ा हो जाना चाहिये तथा उनके जानेके समय उनका अनुगमन करना चाहिये । उनके बिछौने पर बैठना नहीं चाहिये । गुरुके ढाँढ़-ढपट और भस्सना करने पर उनका तिरस्कार करना अथवा उनके प्रति कठोर बचन नहीं बोलना चाहिये । गुरुकी सेवा किये बिना कभी भी मन्त्र प्रहण नहीं करना चाहिये । गुरुकी निन्दा करनेवालोंका संग भूल कर भी नहीं करना चाहिये । उनके साथ तो बोलना भी नहीं

चाहिये । मांस, मछली, सुअर, कच्छप, अणहा आदिका भज्जण नहीं करना चाहिये । पाठुकाके साथ देवता या गुरुके घरमें नहीं जाना चाहिये ।

पालन करने योग्य कर्त्तव्य

(१) ब्राह्ममुहूर्तमें हरिकीर्तन करते-करते विस्तरा कोड़ देना चाहिये । (२) वाच और गतुति-पाठ पूर्वक भगवान्को उठाना, (३) बालादिके साथ मंगलारति करना, (४) प्रातः स्नान करना, (५) नये साफ-सुधरे वस्त्र-धारण, (६) अपने अभीष्टदेवका अर्चन, (७) उर्ध्व पुण्ड्र तिळक धारण, (८) शंख-चक्र आदि धारण, (९) चरणामृत पान करना, (१०) तुलसी माला आदि धारण, (११) निर्मालिय अर्थात् श्रीविघ्रह को अपित किये गये पूष्ण-माल्य आदिको मङ्गलारतिसे पूर्व उतारना, (१२) निर्मालिय चन्दन शरीरमें लेपन, (१३) शालग्राम और श्रीविघ्रह पूजन, (१४) निर्मालिय तुलसीका समादर अर्थात् अपने मस्तक पर धारण, (१५) तुलसी चयन, (१६) तान्त्रिकी संध्या, (१७) शिखा-बन्धन, (१८) चरणामृतसे पितृतर्पण (१९) भक्तिके अनुकूल नित्य-जैग्मिज्जिक अनुष्ठान, (२०) महा उपचारके साथ भगवान्का पूजन, (२१) भूत-शुद्धि और न्यास, (२२) नये-नये फूल और फल आराध्यदेवको समर्पण करना, (२३) तुलसी पूजा, (२४) भक्ति ग्रन्थोंकी पूजा, (२५) त्रैकालिक हरिपूजन, (२६) पुराण अवण, (२७) निवेदित वस्त्रधारण, (२८) भगवान्की आङ्गा समझ कर सदू अनुष्ठानोंको करना, (२९) गुरुकी आङ्गाका पालन, (३०) गुरुके वचनोंमें विश्वास, (३१) मन्त्र और देवताओंके अनुसार आवाहन आदि मुद्राओं

की रचना, (३२) भजनके उद्देश्यसे नृत्यगीतादि, (३३) शंख-ध्वनि, (३४) लीला अनुकरण, (३५) हवन, (३६) नैवेद्य अर्पण, (३७) साधुका आदर, (३८) साधु-पूजा, (३९) नैवेद्य-भोजन, (४०) ताम्बूल का अवशेष ग्रहण, (४१) वैष्णव-सेवा, (४२) विशिष्ट धर्मकी जिज्ञासा, (४३) दशमी एकादशी और द्वादशी इन तीनों दिन नियमद्वारा रवास्थ्य रक्षा, और सन्तोष, (४४) जन्माष्टमी आदि महोत्सवोंका अनुष्ठान, (४५) देव-मन्दिरमें जाना, (४६) आष्ट महाद्वादशी पालन, (४७) सब ऋतुओंमें महोपचारके साथ हरिपूजन, (४८) वैष्णव ब्रत-पालन, (४९) गुरु में ईश्वर बुद्धि, (५०) सर्वदा तुलसी संप्रह, (५१) शश्या, पाद-सम्बाहनादि उपचान प्रदान, (५२) श्री रामादि भगवद्वतारोंका चिन्तन—इन ५२ मकारके अनुष्ठानोंका पालन करना कर्त्तव्य है ।

५२ प्रकारके निषेध

भक्तिराज्यमें प्रवेश करनेकी इच्छा रखने वाले साधकोंके लिये निम्नलिखित ५२ प्रकार के निषेधोंको भी अवश्यमेव मानना चाहिये—

(१) दोनों संध्याकालोंमें शयन, (२) घटीके बिना शौच, (३) खड़े होकर आचमन, (४) गुरुके सामने पैर पसारना, (५) गुरुकी छाया लाँघना (६) समर्थ होते हुए भी स्नान न करना, (७) देवार्चनमें आलस्य, (८) देवता और गुरुको अभ्यर्थना न करना, (९) गुरुदेवके आसन पर बैठना, (१०) गुरु के सामने पाणिहस्य प्रकाश करना, (११) जंघाके ऊपर पैर रखना, (१२) हिंगुके नैवेद्यका उलझन करना, (१३) मन्त्रहीन तिळक और आचमन, (१४)

नीला वस्त्र धारण करना, (१५) भगवत्-विमुख और वैष्णव विद्वौषीके साथ मित्रता, (१६) असत् शाखा पाठ, (१७) तुच्छ संग-मुख्यमें आसक्ति, (१८) मध्यमांस सेवन, (१९) मादक औषधि सेवन, (२०) मसुरी दालके साथ अन्न भोजन, (२१) प्याज, लहसुन आदि भोजन, (२२) अवैष्णवके निकट अन्नमहण, (२३) अवैष्णव व्रतका पालन, (२४) अवैष्णव मन्त्र प्रहण करना, (२५) मारण-उच्चाटन आदि अनुष्ठान, (२६) सामर्थ्य रहने पर भी हरिसेवामें कृपणता करना, (२७) शोकके वशीभूत होना, (२८) दशमी युक्त एकादशीव्रतका पालन, (२९) शुक्ल और कृष्ण पक्षकी एकादशीमें भेद मानना, (३०) जुआ खेलना, (३१) समर्थ होने पर भी ब्रत-उपवासमें अनुकूल्य रखीकार, (३२) एकादशीके दिन भाज्ञ, (३३) द्वादशी के दिन शयन, (३४) द्वादशीमें विष्णु स्नान, (३५) विष्णुके प्रसादके सिवा दूसरी वस्तुओंसे भाड़, (३६) वृद्धि आद्में अतुलसी, (३७) अवैष्णव या राज्ञस श्राद्ध, (३८) चरणामृत रहते हुए भी पवित्रता के लिये दूसरे जलसे आचमन करना, (३९) काठके आसन पर बैठे हुए की पूजा करना, (४०) पूजाके समय असत् कथा, (४१) गृह कनेर या आकके फूल से पूजा, (४२) लौह निर्मित धूप पात्र व्यवहार, (४३) प्रमाद वश भी तिरछा पुँड्र धारण, (४४) असंकृत द्रव्य द्वारा पूजन, (४५) चंचल चित्तसे अर्चन, (४६) एक हाथसे प्रणाम और केवल एकबार

प्रदक्षिणा, (४७) असमयमें श्रीमूर्ति दर्शन, (४८) वासी अन्न निवेदन, (४९) असंख्य जप, (५१) मन्त्र प्रकाश, (५१) मुख्यकाल त्याग और गौणकाल प्रहण, (५२) विष्णुप्रसाद अस्त्रीकार।

श्रीगुरु और श्रीगुरु-सेवकका तत्त्व

गुरु और गुरु सेवक—ये दोनों नित्य हैं। यदि कोई श्रीगुरुदेवको मन या हृश्य जगत्की (पञ्चभूत द्वारा रचित) कोई वस्तु समझता है, तो वह बास्तव में नित्य गुरु सेवक नहीं हो सकता है। गुरुदेवमें मत्यवुद्धि करनेसे—मरणशील मानव समझनेसे तथा गुरुसेवकके शरीरको नश्वर जाननेसे अप्राकृत वस्तुकी नित्यतामें नाना-प्रकारके सन्देह उपस्थित होते हैं हैं। गुरु और शिष्यका सम्बन्ध नियंत्र और आत्मभर्ममें प्रतिष्ठित होता है। उसमें कोई हेतुता नहीं होती। विषयोंके प्रति ममता बुद्धि न होने से शिष्य समझ पाता है कि उसका स्वरूप “कृष्णदास” है। भूतिमें लिखे गये “तत्त्वमसि इवेतकेतो” मन्त्र को सुनकर शिष्य अपनेको विशुद्ध ‘चित्तकण’ या अगुचित् जान पाता है। उस समय गुरुदास स्वरूपमें अवस्थित होकर वह कहता है—

‘श्रीचतन्य-मनोभीष्ट’ स्थापितं येन भूतले ।

श्रीरूपं हि कदा मह्यं ददाति स्वपदान्तिकम् ॥

—श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती

सन्दर्भ-सार

तत्त्व-सन्दर्भ-३ (श्रीमद्भागवतकी श्रेष्ठता)

कुछ आधुनिक मतबादियोंके मतानुसार पुराणों की भाषा अत्यन्त सरल है; इसीलिये पुराण आधुनिक लोगों हाश रचित है वे कदापि प्राचीन नहीं है। परन्तु थोड़ासा विचार करने पर ही उनकी यह युक्ति निराधार एवं अयुक्तिसंगत ठहरती है। ‘पुराण’-शब्दका अर्थ है—पुरातन या पुराना अथवा वेदके कुछ अंशका पुरण करते हैं, इसलिये इनका नाम ‘पुराण’ है। जैसे—पूरणात् पुराणम्। वेदस्यार्थपूरणे न पुराणं कथ्यते बुधैः। न हि अपरिपूर्णस्य कलाकृष्णाभरत त्रिपुणा पूरणं वुज्वते। अतश्चूर्णं वर्णकं गणके बचे हुए अंशको त्वरण्हारा ही पूरा किया जा सकता है, सीखाड़ारा नहीं। उसी प्रकार जो वेद का अर्थ पूरण करता है, वह वेदके अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं है, अर्थात् वेद ही है। पुराणोंकी भाषा सरल होनेका कारण पहले ही बतलाया जा चुका है।

अब सब पुराणोंमें श्रीमद्भागवतकी श्रेष्ठताका कारण बतलाया जा रहा है। अन्यान्य पुराण पाँच लक्षणों से युक्त हैं, परन्तु श्रीमद्भागवत दस लक्षणोंसे युक्त होनेके कारण सर्वशेष हैं। दस लक्षण ये हैं—

- (१) सर्ग—पञ्चभूत आदिकी उत्पत्ति।
- (२) विसर्ग—ब्रह्माद्वारा चराचरकी सृष्टि।
- (३) स्थिति—भगवानकी विजय; ब्रह्मा और शिवसे उनका श्रेष्ठत्व।
- (४) पोषण—भक्तोंके प्रति अनुप्रद।

(५) उति—कर्म-वासना।

(६) मन्त्रन्तर—सात्त्विक जीवोंके आचरणीय कर्म।

(७) ईशकथा—श्रीहरिके अवतारों एवं भक्तोंकी कथाएँ।

(८) निरोध—श्रीहरिकी योगनिद्रा।

(९) मुक्तित्रय—स्थूल और सूक्ष्म उपाधि त्याग कर शुद्ध जीवस्वरूपमें स्थिति।

(१०) आश्रय—जिनसे विश्वकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयादि होती है, वे प्रमिद्ध परमात्मा।

लिखित पुराण-इतिहासको प्रकाशित एवं ब्रह्म-सूत्रको रचना करके भी जब भगवान् वेदव्यासका चित्त प्रसन्न नहीं हो सका, तब उन्होंने इसका कारण जाननेके लिए देवर्षि नारदसे जिज्ञासा की और उनके उपदेशानुसार समाधिस्थ होकर ब्रह्मसूत्रके अकृत्रिम भाष्यके रूपमें श्रीमद्भागवतको प्राप्त कर उसका जगतमें प्रचार किया। उन्होंने समाधिमें यह देखा कि जीव मायाके वशीभूत होकर संसारमें त्रिताप आदि दुःखोंसे जर्जरित हो रहे हैं और एक मात्र श्रीमद्भागवतका श्रवण करके ही वे श्रीकृष्णपाद-पद्मोंमें भवित प्राप्त करके मायासे छुटकारा पा सकेंगे।

श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें गहव पुराणमें इस प्रकार कहा गया है—

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थं विनिरुद्यः ।
गायत्री भाष्यस्तोऽसी वेदार्थं परिवृहितः ॥
पुराणानां सामरूपः साक्षात् भागवतोदितः ।
द्वादशस्तकन्धयुक्तोऽयं शतविच्छेद-संयुतः ।
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः ॥

श्रीवेदव्यासके मानसपटल पर ब्रह्मसूत्र सूहमाकारमें आविभूत होने पर वह सूत्रके रूपमें प्रथित हुआ । तदनन्तर श्रीमद्भागवतमें उसका विस्तार हुआ । इसीलिये श्रीमद्भागवतको ब्रह्मसूत्रका अकृत्रिम भाष्य कहा गया है । इस श्रीमद्भागवतमें महाभारतका अर्थ भी निर्णीत हुआ है ।

भारतं सर्ववेदाश्च तुलामारोपितः पुरा ।
देवैर्ह्याविनि लवं ऋषिभिर्समन्वितैः ॥
वासस्यं वाज्या तत्र त्वतिरिच्यते भारतम् ।
महत्वाद्भारवत्वात्त्वं महाभारतमृच्यते ॥

महाभारतको सभी शास्त्रोंका निचोड़ कहा गया है । किसी समय देवगण एवं ऋषिगण मिल कर वेदव्यासकी आज्ञासे महाभारत और वेदोंमें कौन अधिक भारी है, यह जाननेके लिये तुलादण्डके एक पलड़े पर महाभारतको और दूसरे पलड़े पर सम्पूर्ण वेदको रखा तो महाभारत बाला पलड़ा नीचे हो गया अर्थात् महाभारतका अधिक भार अर्थात् महत्व हुआ, इसी महत्व और भारतके कारण ही महाभारत नाम पड़ा । महाभारतमें प्राम्य-कथाओंके माध्यमसे जिन कथाओंका वर्णन हुआ है, श्रीमद्भागवतमें उनका तात्पर्य प्रकाशित है । भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी अन्तर्द्वान् लीलाका महाभारतमें जो उल्लेख है वह केवल ऐतिहासिक हष्टिकोणसे है; फिर भी उसके द्वारा साधारण लोगों की धारणा ऐसी

बन जाती है कि मानो वह सत्य ही है । परन्तु श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णचन्द्रके अन्तर्द्वान्-प्रसंगमें उक्त तात्पर्यको विशेष रूपमें प्रकाशित कर भगवान् का अजत्त्व और अठययत्व स्थापित है । प्राम्यकथा का तात्पर्य चूहा, बिल्ली, गीध आदि हृष्टान्तोंसे युक्त उपाख्यान से है ।

श्रीमद्भागवत गायत्रीके भाष्यस्वरूप हैं । वेद भगवत्पर हैं; वेदमाता गायत्री भी भगवत् परा हैं । श्रीमद्भागवत गायत्रीका अर्थ-विस्तार-स्वरूप होने के कारण वे भगवत्परा गायत्रीके भाष्यरूपमें प्रसिद्ध हैं । मरुस्यपुराणमें श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें इस प्रकार कहा गया है—

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्णते घर्मविस्तरः ।
भृष्टावच्च त्रहस्ताणि तुराणां तत्र ग्रन्थीतित्तत् ॥
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्तकसम्मितः ।
गायत्र्या च समारम्भस्तद्वै भागवतं विदुः ॥

श्रीमद्भागवतके प्रथम और अन्तिम श्लोकोंमें गायत्रीका तात्पर्य प्रस्फुटित है । गायत्रीके 'भर्म'—शब्दका अर्थ 'उत्पोति' से है । कुछ लोग 'सवितु' शब्दसे सूर्यको समझते हैं, परन्तु अग्निपुराणके निष्ठलिखित श्लोकमें उक्त विचारका खण्डन किया गया है—

तज्ज्योतिः परमं ब्रह्मभर्मस्तेजो यतः स्मृतः ।
तज्ज्योतिभंगवान् विष्णुर्जगजन्मादिकारणम् ॥
शिवं केचित् पठन्ति स्म शतिरूपं वदन्ति च ।
प्रग्न्यादिरूपी विष्णुर्हि वेदादौ ब्रह्म गीषते ॥

—ग्रन्थिपुराण

भर्गका अर्थ उयोति है । यह उयोति जगतके जन्म आदिके कारण विष्णुका तेज है । उनको कोई-कोई शिव, कोई-कोई शक्ति, कोई-कोई सूर्य और कोई - कोई अग्निहृष्म में कल्पना करते हैं; परन्तु वेदादिमें परब्रह्म विष्णुको ही एकमात्र 'उयोति:' —शब्दसे लक्ष्य किया गया है । गायत्रीमें सवितुः पदसे सूर्यका बोध नहीं होता, बल्कि सूर्यके अन्तर्यामी जगतके जन्म आदिके मूल हेतु विष्णुका ही एकमात्र बोध होता है । सवितुः का अर्थ—प्रसवितः अर्थात् सृष्टि आदिके हेतु से है ।

श्रीमद्भागवतकी महिमाका गान सभी शास्त्रोंमें किया गया है । स्कन्द पुराणमें देखिए—

शतशोऽथ सहस्रैच किमन्वैः शास्त्रसंग्रहैः ।
न यस्य तिष्ठति गेहे शास्त्रं भागवतं कली ॥
कथं स वैष्णवो तंय शास्त्रं नागवतं कली ।
गृहे न तिष्ठते यस्य स क्रिप्रः इवपचाष्मः ॥
नन नन भजेद् निम ! शास्त्रं भागवतं कली ।
तत्र तत्र हरि र्याति विद्यौः सह नारद ॥

सैकड़ों-हजारों दूसरे-दूसरे शास्त्रोंके संग्रहसे क्या लाभ ? कलियुगमें जिसके गृहमें श्रीमद्भागवत शास्त्र नहीं विराजते, वह ब्रह्मण होने पर भी चारडालसे भी अधम है । कलियुगमें जहाँ-जहाँ श्रीमद्भागवतका पाठ होता है, वहाँ - वहाँ ओहरि समस्त देवताओंके साथ गमन किया करते हैं ।

प्रत्योऽष्टादशशास्त्रो द्वादशस्त्रकन्द - सम्मितः ।
हयग्रीव - ब्रह्मविद्या यत्र वृत्तवधस्तथा ।
गायत्रा च समारम्भस्तद्वै भागवतं विदुः ॥
(अग्निपुराण और मत्स्यपुराण)

अम्बरीष-शुक्रप्रीत्क नित्यं भागवतं शृणु ।
पठस्व स्वमुखेनापि यदिच्छसि भवक्षयम् ॥
(पष्पुराण)

श्रीमद्भागवतं भक्त्या पठते हरिसन्निधौ ।
जागरे तत्पदं याति कुलवृन्द-समन्वितः ॥
(प्रह्लादसंहिता)

श्रीमद्भागवतका परिचय—श्रीमद्भागवत वह महापुराण है जिसमें १८००० श्लोक और १२ स्कन्ध हैं, जिसमें हयग्रीव ब्रह्मविद्या और वृत्तवधका वर्णन है और जिसका आरम्भ गायत्री मन्त्रद्वारा हुआ है, उसी श्रीमद्भागवतका अवण करना चाहिये । दधीचिमुनिने अश्वशिर होकर ब्रह्मविद्याका उपदेश किया था । किसी समय दोनों अश्विनीकुमार दधी-चिमुनिके समाप्त ब्रह्मविद्या प्राप्त करनेके लिये गये थे । दधीचिमुनिने उनको फिर किसी दूसरे समय आनेके लिये कहा । उनकी बात सुनकर जब अश्विनी कुमार वहाँसे चले गये, तब वहाँ इन्द्र उपस्थित हुए और दधीचि मुनिसे बोले—‘महर्ष ! ये दोनों बैद्य जातिके हैं । अतएव उनको आप ब्रह्मविद्याका उपदेश न करेंगे । यदि आप मेरी इस आज्ञाका उल्लङ्घन करेंगे तो आपका सिर कट जायगा ।’—ऐसा कह कर इन्द्र चले गये । कुछ समयके उपरान्त दोनों अश्विनीकुमार फिर दधीचि मुनिके पास उपस्थित हुए और इन्द्रकृत असदृश्यवद्वारकी बात सुनकर बोले—‘मुनिवर आप भय न करें; हमलोग योगबल से आपका मस्तक काटकर सुरक्षित रखकर उसकी जगह घोड़ेका सिर लगा देते हैं । आप उसी मुखसे हमें ब्रह्मविद्याका उपदेश करें । पीछे जब इन्द्र आपके

अश्वमुण्डको काट देंगे, तब हम पुनः आपका पूर्व मुण्ड जोड़ देंगे । दधीचिने ऐसा ही किया ।

‘शुक प्रोक्त’—यह विशेषण देखकर कुछ लोग ऐसा सोच सकते हैं कि श्रीमद्भागवतका प्रथम स्कन्ध और द्वादशस्कन्धके छठे अध्यायके कुछ अंशसे लेकर अन्तिम अध्याय तक शुकदेव कथित अंश नहीं है । क्योंकि द्वादशस्कन्धके षष्ठे अध्यायमें ‘जगाम भिजुभिः साकं नरदेवेन पूजितः’—इस श्लोकमें परीचित द्वारा पूजित होकर भिजुके साथ शुकदेवजीके बहाँसे गमन करनेका उल्लेख है । और भी उसमें कुछ सूत-शीनक आदिकी उक्तियाँ भी हैं । तब क्या पूरी भागवत श्रीशुकदेवद्वारा कथित नहीं है ? क्या ‘शुकप्रोक्त’ कहनेसे कुछ अंशमात्रको ही समझा जाय ?—इस आशंकाको दूर करनेके लिये श्रीधर स्वामीने कहा है—अनागताख्यानेनवास्य

शास्त्रस्य प्रवृत्तिः ।’ अर्थात् जो वृत्तान्त उपस्थित नहीं हुआ है, उस भविष्यत विषयके सम्बन्धमें ही श्रीमद्भागवतकी प्रवृत्ति है । अतएव गायत्रीके अर्थको प्रकाश करनेवाले प्रथम स्कन्धके पहले श्लोकसे लेकर द्वादशस्कन्धके अन्तिम श्लोक ‘विष्णुरात्मसुमुच्चत्’ तक सम्पूर्ण भागवतका ही शुकदेवजीने महाराज परीचितको सुनाया था । पुराणोंको प्रकाश करते समय वेदव्यासजीने सर्वांश प्रकाश न कर केवल अभिधेयांश मात्रको प्रकाशित कियां था । पीछेसे प्रारंत प्रकाशित हो चुकने पर वेदव्यासजे उनके द्वारा पूर्णरूपमें संवित्त करके सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका प्रकाश किया तथा उस पूर्ण श्रीमद्भागवतका अध्ययन श्रीशुकदेवको कराया था । ऐसा स्वीकार नहीं करनेसे दूसरे-दूसरे शास्त्रोंसे विरोध पड़ जायगा ।

—निष्ठिरपानी श्रीमद्भुतप्रभुवेष औरी महाराज

हरिनाम

न नामसहशं ज्ञानं न नामसहशं व्रतम् । न नामसहशं ध्यानं न नामसहशं फलम् ॥
न नामसहशस्त्यागो न नामसहशः समः । न नामसहशं पुण्यं न नामसहशी गतिः ॥
नामेव परमा शन्तिर्नामेव परमा स्थितिः । नामेव परमा भक्तिर्नामेव परमामतिः ॥
नामेव परमा प्रीति नामेव परमास्मृतिः । नामेव कारणं स्मृतिः जन्तोर्नामेवप्रभुरेव च ॥
नामेव परमाराध्यो नामेव परमोगुरुः ॥

—श्रादिपुराण

—नाम चिन्मय वस्तु हैं । नामके समान ज्ञान, नामके समान व्रत, नामके समान ध्यान, नामके समान फल, नामके समान त्याग, नामके समान शाम, नामके समान पुण्य और नामके समान गति और कहीं नहीं हैं। नाम ही परमा गति हैं, नाम ही परमा शान्ति हैं, नाम ही परम धाम हैं, नाम ही परमा भक्ति हैं, नाम ही परमा मति है और नाम ही परमा प्रीति और परमा स्मृति भी है, इसे निश्चयरूपमें जान लो । नाम ही जीवके कारण हैं, नाम ही जीवके प्रभु हैं और नाम ही परमाराध्य वस्तु हैं । और क्या, नाम ही परम गुरु हैं ।

श्रीमद्भागवतमें दास्यभाव

(वर्ष १० संख्या ५ गुड १०६ से आगे)

दास्य भाव छलकता हुआ रसमय सागर है। शीतल सुखद प्रकाश है। पापताप शामी नवनीरद धनश्याम है। अहंता ममता प्रक्षालन कर्त्ता निरन्तर प्रवहमाना भगवल्जीला-माधुरी-सरित्का प्रवाहक है। संसार के गम्भीर आधकृपमें निपतित मानवका उद्धारक है। दास्य भावका आश्रयप्रहण कर पशु-पक्षी एवं असुर भावापन्न व्यक्ति भी देव-दुर्लभ पद प्राप्त करता है। दास्यभावमें निमग्न होने पर उसे प्रभुके अन्तरङ्ग सेवकका स्थान मिलता है। फिर वह दास्यभावकी प्रभवीमें नित्रको, परिवारको, संसारको भूल कर मस्त गजराजकी भाँति उसकी मादकतामें भूमता रहता है, दिव्यलोकमें विवरण करता है।

दास्यभावकी सम्पत्तिका धनी इन्द्रके विशाल धैर्य ऐश्वर्यको भी तुच्छ समझता है। उसके समन्वय-बल, तप-बल, शक्ति-बल, विद्या-बल कोई महत्वकी वस्तु नहीं रहते।

परन्तु इस भावका आनन्द, इसके अपूर्व धौर्यका आभास जीवको प्रभुकी असीम अनुकूल्य, परमकारुणिक गुरुकी कृपासे ही प्राप्त हो सकता है। ऐसे महाभागवत दास्यभक्त, मनुष्य हों, राज्ञस हों, पशु-पक्षी हों, जीवमात्रके लिये परम अहेय हैं। क्योंकि वे लीला निकेतन प्रभुके निज जन हैं।

वर्तमान युगमें जीवका परम कल्याण इसीमें है कि वह सामयिकी निरन्तर परिवर्द्धमाना-

ध्वंसात्मिका भौतिकवादी स्वार्थपरा प्रवृत्तियोंमें अपनेको निमग्न न करे। आपात् रमणीया कामिनी-काङ्गनकी मायासुरगमरीचिकामें भ्रमित न हो। किन्तु कलहपूर्ण दम्भ पाखरहसे सज्जित विनाशी संसारसे आसक्तिका परित्यागकर परम कृपालु प्रभुके निकट अति निकट पहुँचनेका प्रत्यत्न करे।

इस युगमें वही परमभाग्यवान् है जो अपने अमूल्य समयका सदुयोग भगवान् एवं भगवद्भक्तोंकी गुण चर्चामें करता है। यदि वह ऐसा नहीं करता, संसार समुद्रमें हुबकियाँ लगानेमें ही अपना गौरव मानता है, तो ऐसे अविवेकी पुरुषमें और ज्ञानशून्य पशुमें क्या अन्तर है ? अविवेकी जीव संसारके नश्वर भोगोंमें क्या शाश्वतिक शान्ति-मुखकी प्राप्ति कर सकेगा ? क्या न्याय-अन्यायसे सम्पादित भोगोंका सम्बन्ध उसके साथ सदैव रहेगा ? एक दिन उसे अपना सारा विशाल धैर्य यही छोड़कर जाना ही पड़ेगा। ऐसी दशामें क्या होगा ? वह भगवच्चरणारविन्दोंसे, अपने नित्य स्थानसे, कितने समयके लिये दूर हो जायगा, पाप पंकमें फँसकर, भवाटबीके चक्रमें निपतित होकर युगों-युगों तक छटपटाता रहेगा, रोता रहेगा।

अतः जीवको परम्परागत अपने संस्कारोंकी ओर झुकना है। अपनी घढ़ती हुई सामयिक प्रवृत्तियोंको रोकनेका अभ्यास करना है। अपने

स्व-स्वभाव दास्यभावको प्रकट करनेके लिये साधन करना है। सांसारिकतासे चित्तको हटाकर उसे परम-आनन्ददायी शीतल सुखद भगवच्चरणारविन्दोमें लगानेका सतत प्रयत्न करना है, अभ्यास करना है।

अस्तु, विगत प्रबन्धमें अधिकृतदासोंकी दास्य-भक्ति-सुरसरितामें आपने अवगाहन किया था, अब आश्रित दासोंके अन्तर्गत शरणागतदासोंकी कथामाधुरीकी गङ्गामें अवगाहन कर भौतिक ताप-संताप दूर कीजिये।

ध्रुव शरणागत दास है। वह सब कुछ छोड़कर परम प्रभुकी शरणको ही अपना ध्येय चुनता है। वह विशाल बैभवशाली उत्तानपादका पुत्र है। अभी छोटा है, बहुत छोटा, केवल पाँच वर्षका अबोध बालक। एक दिन उसने देखा, राजा छोटे सीतेले भाई उत्तमको गोदमें बिठाकर उसका लालन कर रहे हैं। ध्रुवके हृदयमें भी स्वभावतः पिताकी गोदमें आरोहण करनेकी इच्छा बलबती हो गई। वह पिता के पास पहुँचा और गोदमें बैठनेकी लालसा प्रकट की। परन्तु पिताने ध्रुवकी ओर ध्यान नहीं दिया, उसका सत्कार नहीं किया। विमाता सुरुचिने गर्वित होकर इधर्योंसे भरे अकथनीय वचन कहे—

न वत्स नृपतेऽधिष्ठर्ण भवानारोहुमहृति ।

न गृहीतो मया यत्वं कुक्षावपि नृपात्मजः॥

(भा. ४।८।११)

बच्चे ! तू राजाका पुत्र होने पर भी राजसिंहासन पर बैठनेका अधिकारी नहीं है; क्योंकि मैं तुम्हे अपने गर्भमें धारण नहीं किया है।

तपसाऽराध्य पुरुषं तस्यैवानुप्रहेण मे ।

गर्भे त्वं साधयात्मानं यदीच्छसितृपासनम्॥

(भा. ४।८।१३)

तू अभी नादान है, तुम्हे पता नहीं है कि तू किसी दूसरी लड़ीके गर्भसे पैदा हुआ है। यदि तू राजगद्दी चाहता है तो—

तपसे परमेश्वरकी आराधना कर उन्हींके अनुप्रह से मेरे गर्भमें आनेका साधन कर।

विमाताके ऐसे कटुतीच्छण शब्द ध्रुवके हृदयमें चुभ गये। वह दण्डसे आहत सर्पकी भाँति क्रोधसे निःश्वास छोड़ता हुआ पिताके पाससे रुदन करता हुआ ही अपनी माता सुनीतिके पास पहुँचा। जैसे ही माताने पुत्रकी दशा देखी वह अपने पुत्रका अपमान और सपत्नीके स्वरूपका स्मरण करती हुई धैर्य छोड़कर विलाप करने लगी। उसके नेत्रोंसे अशुघारा बहने लगी। अन्तमें दीर्घ निश्वास छोड़ती हुई बोली—‘बेटा ! तुम्हारी विमाताने ठीक ही कहा है। तू मुझ अभागिनीका पुत्र है, जिसे राजादासीके हृषमें भी स्वीकार करनेमें लड़ताका अनुभव करता है। यह भी सत्य ही है कि तूने उसके उदरसे जन्म प्रदण नहीं किया। मेरे लाल ! अब इस अपमानका विचार न कर, अब यदि तेरी उत्तम पद प्राप्त करने की इच्छा है तो मत्सरता छोड़कर तेरी विमाताने जो सत्यमार्ग—अधोक्षजके पादपद्मसेवनका प्रकट किया है, उसका आश्रय प्रदण कर।

यस्यांघ्रिपद्मं परिचयंविश्व-

विभावनायात्तगुणाभिपत्तेः ।

अजोऽध्यतिष्ठखलु पारमेष्ठयः,

यदं जितात्मश्वसनाभिवन्धम्॥

(भा. ४।८।२०)

जगतकी रक्षाके निमित्त सत्त्वगुणका आश्रयप्राप्त कर जिन परमात्माके चरण कमलोंकी सेवा करके ब्रह्मा ब्रह्मवदको प्राप्त हुए हैं, जिन भगवानकी मन और प्राणोंको बशमें करके मुनिजन वन्दना करते हैं, इसलिये तू भी उनके चरणोंका ही आश्रय प्रदण कर।

नात्यं ततः पद्मपलाशतोचनाद्
दुःखच्छ्रद्धं ते मृगयामि कंचन ।
यो मृग्यते हस्तगृहीतं पद्मया
श्रियेतरंगं विमृग्यमाणया ॥

(भा. ४।६।२३)

कमलके समान नेत्रबाले भगवानके सिवा दूसरा कोई तेग दुख मिटानेवाला मुझे नहीं दीखता। बेटा ! जिन्हें ब्रह्मादि देवता दूढ़ते रहते हैं, लक्ष्मी भी हाथमें दीषकी भाँति कमल लिये जिन्हें खोजती फिरती हैं तू उन्हीं श्रीहरिका आश्रय प्रदण कर।

माताके सदुपदेशसे भ्रुवने अपना मार्ग स्थिर कर लिया और पाँच वर्षकी छोटी शवस्थामें ही भगवत्प्राप्तिके लिये चल पड़ा। उसने न कट्टोंके सम्बन्धमें सोचा, न भगवत्प्राप्ति कैसे होगी, इसका ही विचार किया। बस, चल पड़ा।

जिसके हृदयमें भगवत्प्राप्तिकी उत्कट लालसा जागृत हो जाती है, उसे किसीका भी भय नहीं होता। वह भयानक आँधी तूफानसे भी नहीं रुकता; वह तो अपने निर्णीत मार्ग पर बढ़ता ही जाता है। ऐसे हृदि निश्चयशील के लिये कठिन मार्ग भी सुगम हो जाता है। उसे दुःख विनाशक गुरुके भी दर्शन हो जाते हैं।

भ्रुवको भी अधिक समय नहीं लगा। मार्गमें

थोड़ी दूर चलने पर ही उसे वीणापाणि नारदके दर्शन हुए। उन्होंने आप ही आगे बढ़कर भ्रुवका हाथ धाम लिया और मस्तक पर हाथ फेरते हुए पूछने लगे—“पुत्र ! तू कहाँ जा रहा है ?” तब भ्रुवने अपनी बीती सारी कथा कह दी। नारदने कहा—‘अभी त्रिमाताके द्वारा तेरा मान-अपमान ही कैसा ? तू अभी बालक है। बालकोंके लिये ऐसी कई घटनाएँ दिन-प्रतिदिन घटती ही रहती हैं। क्या उसमें बालक मान अपमानका विचार करता है। इसलिये तू घर लौट जा। पर यदि तू नहीं मानता है और माताके बच्चोंके अनुसार भगवान्को प्राप्त करना चाहता है, तो मेरी भग्नतिसे उन्हें प्राप्त करना बड़ा ही कठिन है। युगां-युगोंसे जिनको प्राप्तिके लिये मुनिशण तपस्था करते हैं, किन्तु किर भी उन्हें प्राप्त नहीं कर पाते, वन भगवान्की प्राप्ति तू बालक कैसे कर सकता है ? इसलिये अपने विचारको छोड़ दे। मेरी बात मान जा। नारदके बाबार समझाने पर भी बालक भ्रुव अपने सिद्धान्तसे नहीं डिगा। और नारदके चरणोंमें गिरकर भगवत्प्राप्तिके लिये साधन बतानेका आग्रह करता रहा। इससे नारदका करुणापूरित कोमल हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने कहा—‘वत्स, तुम्हारी माताने जो मार्ग बताया है, वही ध्रेयस्कर है—

धर्मर्थं काममोक्षास्यं य इच्छेच्छ्वेय आत्मनः ।

एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम् ॥

तत्तातगच्छ भद्रं ते यमुनायाः तटंशुचि ।

पृथ्यं मघुवनं यत्र साक्षिध्यं नित्यदाहरेः ॥

(भा. ४।८।४१-४२)

जो मनुष्य कल्याण चाहता है वह धर्म, अर्थ,

काम, मोहके लिये भगवान् श्रीहरिके चरणोंकी सेवा करे, क्योंकि उन्हींके चरण ही कल्याणके मुख्य कारण हैं। इसलिये हे तात ! यमुनाजीके तटपर जो पवित्र मधुवन नामक त्रैत्र है, वहाँ तू जा जहाँ सदा हरि भगवान् विराजते हैं।

इस प्रकार कहकर देवर्षि नारदने ध्रुवको देनिक गृह्य समस्ताया, भगवान्‌के स्वरूपका परिचय कराया और 'अँ नमो भगवते वासुदेवाय' यह द्वादशांत्र मन्त्र प्रदान किया।

नारदके आदेशानुसार भक्त ध्रुव परम पवित्र मधुवन अहुंचा और उसने विधिके अनुसार भगवान् की उपासना करना आरम्भ कर दिया।

ध्रुवने शब्दादि विषय और इन्द्रियोंके नियामक मनको सभी ओरसे खींचकर उसे भगवान्‌के स्वरूप का ध्यान करनेमें दम पकाए लगा दिया कि उस समय उसे दूसरा कुछ भी दिखाई नहीं दिया। उसकी प्रबल तपस्यासे सबका श्वांस रुक गया जिससे देवता तक विकल हो गये। वे अपनेको निरुपाय समझकर चराचरके स्वभी भगवान्‌की शरणमें गये और उनसे उन्होंने प्रार्थना की कि हे नाथ ! चराचर प्राणियोंके शरीरके श्वांस रुक गये हैं। अतः इस कष्टका आप निवारण करें। हमारी इक्षा करें। भगवान्‌ने देवोंकी प्रार्थना सुनकर प्रसन्न मुख मुद्रासे कहा—तुमलोग किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो—

मा भैष बालं तपसो दुरत्यया-
श्वितंयिष्ये प्रतियात् स्वधाम ।
यतो हि वः प्राणं निरोध आसीत्-
ओत्तानपादिर्मयि सञ्ज्ञतात्मा ॥

(भा. ४।८।८२)

उत्तानपादका पुत्र ध्रुव इस समय ध्यानयोगके द्वारा एकान्तरूपमें मंदगत चित्त (तन्मय) हो रहा है जिससे सबका श्वांस रुक रहा है। मैं उसे कठोर तपसे निवृत्त करूँगा। तुम लोग अपने-अपने स्थानको छले जाओ। देवगण भगवान्‌का आदेश पाकर उनको नमस्कार करके स्वर्गको छले गये—
सहस्रशीर्षापि ततो गहस्तामधोवंतं भृत्यदिव्यायागतः ॥

(भा. ४।८।८१)

भगवान् गरुड पर विराजमान कर हो अपने भृत्यके दर्शनोंकी इच्छासे स्वयं मधुवनको पधारे। वहाँ पहुँचकर प्रभुने ध्यान करते हुए ध्रुवके हृदयसे अपना स्वरूप तिरोहित कर लिया। ध्रुव स्वरूपके सहसा अन्तर्दित होनेसे चौक पड़ा। उसने आँखें खोल दी तो सामने रथित उसी रूपके दर्शन हुए जिसका वह ध्यान कर रहा था—

तद्यामेनागतसाध्वसः क्षिता-

ववन्दताङ्गं विनमय दद्ववत् ।
हरम्यो प्रपश्यन् प्रपिबन् निवाभंदक- ॥
इच्छम्बन्निवास्थेन भुजंरिवाश्लषन् ॥

(भा. ४।८।८३)

भगवान्‌के दर्शनसे संध्रम युक्त होकर उस बालक ने पृथ्वी पर दण्डकी भाँति लोटकर दण्डवत् प्रणाम किया और फिर भगवान्‌की ओर इस प्रकार प्रेमभरी दृष्टिसे देखा मानो नेत्रोंसे पीरहा हो, मुखसे चूम रहा हो और भुजाओंसे आलिङ्गन कर रहा हो।

बालक भगवान्‌के गुणोंका वर्णन करना चाहता था। परन्तु वह स्तुति करना नहीं जानता था। सर्वान्तर्यामी श्रीहरि यह बात जान गये। उन्होंने हाथ जोड़ कर खड़े हुए बालक पर कृपा करके अपना वेदमय शंख उसके रूपोलसे लुआ दिया। शंखका

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

द्वितीय वृष्टि (द्वितीय धारा)

पुण्य-कर्म

परलोक-निष्ठा-विधिके माध्यमसे मनुष्यके कर्मानुसार पारलोकिक फलका विचार किया जा सकता है। इस समाजमें रहकर जो सत्कर्म करते हैं, वे देहत्यागके पश्चात् स्वर्गको प्राप्त होते हैं। जो लोग असत्कर्म करते हैं, वे नरकभोग करते हैं। सत्कर्मका नाम—पुण्य है तथा असत् कर्मका नाम—पाप है। पुण्य-याचन्य करनेके लिये जो विधियाँ हैं तथा गांनिवारणकी जो समस्त विधियाँ हैं, उन सबको एकत्र मिलाकर परलोक-निष्ठा विधिका बोध होता है। जिसने प्रकारके असत्कर्म और तर्णाभयगत धर्मोंको कहा जा रहा है, उनमें अनुष्ठानाओंके अधिकारभेदसे तामस, राजस और सात्त्विक—ये तीन प्रकारकी अद्वाएँ लक्षित होती हैं। पुनः ये अद्वाएँ दो प्रकारकी होती हैं—प्रवृत्तिपरा और निवृत्तिपरा। कनिष्ठाधि-

कारीगण प्रवृत्तिपरा अद्वाका अवलम्बन करते हैं। मध्यमाधिकारीगण प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों प्रकारकी अद्वाओंका अवलम्बन करते हैं और उत्तमाधिकारी केवल निवृत्तिपरा अद्वाद्वारा कार्य करते हैं ×। जहाँ जहाँ अनेक देवताओंकी पूजाकी विधि है, उन कर्मोंमें केवल भगवत्पूजाकी जो विधि देखी जाती है, वह सात्त्विक भक्तियोंके लिये विधि है। वैष्णव-वर्णियों को हन्द्रिय तृप्तिरूप भोगका उद्देश्य नहीं होता। तब अप्राकृत गति प्राप्त हो सके, उसके अनुसार कर्म करेंगे (क)। कर्मका नाम जीवन-यात्रा है। तत्त्व-ज्ञानियोंके कर्मके सम्बन्धमें भगवानने गीतामें यह निर्णय किया है कि जो कर्म भक्तिके अनुकूल हों, उनको करना चाहिये। तथा जो कर्म भक्तिके प्रतिकूल हों उनका त्याग करना चाहिये (ख)।

× त्रिविधा भवति अद्वा देहिनां सा स्वभावजा। सात्त्विकी राजसी तामसी चेति तां शुणु ॥

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः। प्रेतान् भूतगणां इच्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥

(गीता १७।२-४)

अस्मिलोके वर्तमानः स्वधर्मस्योऽनधः शुचिः। ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया॥

(भागवत ११।२०।११)

(क) न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हृषिया कुण्डलवत्मेव भूय एवाभिवद्दते ॥(भा. ६।१६।१४)

कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकः स्मरन्। मर्यपितमनदिच्चतो मद्भर्मात्ममनोरतिः ॥(भा. १।१२।६।६)

(ख) न हि करिवत् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिर्जुर्णः ॥(गीता ३।५)

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यञ्च विकर्मणः। यकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः। स तु द्विमात् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥

(गीता ४।१७।१८)

स्वरूपगत और सम्बन्धगत पुण्य

हम यहाँ पुण्य और पापका संचेपमें वेवेचन करेंगे। उनको वैज्ञानिक रूपमें विभाग करना अत्यन्त कठिन है। किसी-किसी ऋषियोंने पाप-पुण्य को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक—इन चार भागोंमें विभक्त किया है। किसी-किसीने उनको कायिक, वाचिक और मानसिक—इन तीन भागोंमें विभक्त किया है। और किसी-किसीने कायिक, ऐन्ड्रियिक और आन्तःकरणिक, इन तीन भागोंमें उनको बाँटा है। फलस्वरूप हम यह देख पाते हैं कि ये विभाग सर्वाङ्गसुन्दर नहीं हो पाये हैं। हम लोग पहले पुण्यको दो भागोंमें विभक्त करते हैं—स्वरूपगत पुण्य और सम्बन्धगत पुण्य। न्याय, दया, सत्य, पवित्रता, मैत्री, आर्जव और प्रीति—ये स्वरूपगत पुण्य हैं। इनको स्वरूपगत पुण्य कहनेका बारण यह है कि ये पुण्यसमूह जीवके स्वरूप का आश्रय कर सदा-सर्वदा उनके अलंकारके रूपमें विराजमान रहते हैं। परन्तु बद्धावस्थ में कुछ स्थूल होकर ये पुण्य नाम धारणा मात्र कर लते हैं। इनके अतिरिक्त दूसरे सभी पुण्य सम्बन्धगत हैं; क्योंकि वे जीवके जड़ सम्बन्ध जन्य चर्यज्ञ हुए हैं। सिद्धावस्थामें उनकी कोई आवश्यकता नहीं होती। पाप कदापि जीवका स्वरूपगत तत्त्व नहीं है। बल्कि वह बद्धावस्थामें जीवको आश्रय करता है। जो पाप-समूह स्वरूपगत पुण्यके विरोधी होते हैं, उन्हें स्वरूप विरोधी पाप कहते हैं। द्वेष, अन्याय, मिथ्या, चिन्तविभ्रम, निष्ठुरता, क्रुरता, लाम्पन्ध-ये कतिपय पापसमूह स्वरूप विरोधी पाप हैं। दूसरे समस्त पाप जीवके सामर्न्धक पुण्यविरोधी हैं।

हम अति संचेपमें पाप-तुण्यका दिग्दर्शन करा रहे हैं। पाठकगण इन संकेतोंसे कुछ परिश्रमकर अनायास ही उनका विस्तृत विचार समझ सकते हैं।

प्रधान-प्रधान पुण्यकर्म दस प्रकारके हैं—(१) परोपकार, (२) गुरुजनोंकी सेवा, (३) दान, (४) अतिथ्य, (५) पवित्रता, (६) महोत्सव, (७) ब्रत, (८) पशुपालन, (९) जगत् वृद्धिके कार्य और (१०) न्यायाचरण।

परोपकार

परोपकार दो प्रकारके होते हैं—(१) दूसरोंका दुःख दूर करना और (२) दूसरोंकी उन्नति का साधन।

अपना और परायाका विचार न करके सभी लोगोंका उपकार करनेमें तत्पर रहना चाहिये। जगत्में जितने प्रकारके कष्ट हैं, वे अपनेको जिस प्रकार बुरे लगते हैं, उसी प्रकार वे दूसरोंको भी बुरे लगते हैं। जब अपने पर दुःख आते हैं, तब हम ऐसा सोचते हैं कि दूसरे यत्नपूर्वक हमारे दुःख को दूर करें। इसलिये दूसरों पर दुःख आने पर भी हमें उनके दुःखको दूर करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। यद्यपि इस कार्यमें स्वार्थपरता बाधक होती है, तथापि जहाँ तक हो सके स्वार्थपरताको दबाकर शक्तिभर दूसरोंका दुःख दूर करनेमें लग जाना चाहिये। साधारणतः ये कष्ट चार प्रकारके होते हैं—
 (१) पीड़ा, भूख आदि शारीरिक कष्ट, (२) कुचिन्ता, हिंसा, शोक और भय आदि मानसिक कष्ट, (३) संसार-पालनमें असमर्थता, पुत्र-कन्याकी शिक्षादीन्ज्ञा और विवाह आदिमें असमर्थता, मृत व्यक्तिके स्तकार आदिके लिये अर्थ और लोकाभाव-ये सामा-

जिक कष्ट और (४) संशय, नास्तिकता और पापकी सूँहा—ये आध्यात्मिक कष्ट। जिस प्रकार दूसरोंका दुःख दूर करनेके लिये प्रयत्न करना चाहित है, उसी प्रकार दूसरोंकी उन्नति-साधनके लिये भी प्रयत्न करना चाहिये। अपनी शक्तिके अनुसार आर्थिक, दैहिक, वाचिक आदि सहायताके द्वारा दूसरोंका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति-साधन करना कर्तव्य है।

गुरुजनोंकी सेवा

गुरुजनोंकी सेवा तीन प्रकारकी होती है—

- (१) माता-पिताका धरण-पोषण और उनकी सेवा।
- (२) उपदेशांकोंका पालन-पोषण और उनकी सेवा।
- (३) सभी गुरुजनोंका सम्मान और उनकी सेवा।

माता-पिताकी आङ्गाका पालन करना तथा उनकी यथासाध्य सेवा करना सबके लिये प्रधान कर्तव्य है। जो निराश्रित हैं, जो सब प्रकारसे अच्छम हैं तथा जिन्होंने हमारी बचपनको अवस्थामें सर्व प्रकारसे

रच्चा की है तथा हमारा पालन पोषण किया है, उनकी अपने सामर्थ्यके अनुसार सब प्रकारसे सेवा करनी चाहिये। बाल्यकालमें जो लोग शिर्चा और उपदेश प्रदान करते हैं, उनका पालन-पोषण और सर्व प्रकार सेवन करना चाहिए। जो परमार्थ-मंत्र और ज्ञानका उपदेश करते हैं, वे सभी उपदेशकोंसे श्रेष्ठ, बरणीय और सेवनीय हैं (क)। जो सम्बन्धमें बड़े हैं, और जो आयु और ज्ञानमें श्रेष्ठ हैं, वे भी गुरुजन ही हैं। उनका भी यथायोग्य सम्मान करना चाहिए। यदि गुरुजनोंका उपदेश अन्यायपूर्ण हो तो उसका पालन नहीं करना चाहिए। परन्तु कठोर बाणी और अपमानसूचक ठबहार द्वारा उनके प्रति घृणा प्रकाश नहीं करना चाहिए, मीठे बचनोंसे नम्रतापूर्वक उपयुक्त समय पर विनयपूर्ण विचार द्वारा उनसे अन्यायपूर्ण उपदेशको स्थगित रखने की प्रायंना करनी चाहिए।

दान

किसी योग्यपात्रको अर्थ और द्रव्य देनेका नाम दान है (ख)। अपात्रको जो दिया जाता है, वह निरर्थक ही अपद्रव्य होता है। ऐसा अपद्रव्य पापके अन्तर्गत परिगणित है।

- (क) असञ्च्छपाज्ययेत् कामं क्रोधं कामविवज्जनात् । अर्थात् लोभं भयं तत्त्वावमर्थणात् ॥
आन्धीक्षिक्या शोकमोहो दंभं महदुपासया । योग्यन्तरायान्मीनेन हिसां कामाद्यनीहया ॥
कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात् समाधिना । आत्मजं योग वीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेदया ॥
रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वञ्चोपशमेन च । एतत् सर्वं गुरी भक्त्या पुरुषो ह्यं जसा जयेत् ॥
यस्य साक्षाद् भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरी । मत्यगिद्वीः शुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशीचवत् ॥ (भा० ७।१५।२२-२३)
- (ख) यथा वात्तदियो ह्यार्था योगस्यादं न विभ्रति । अनर्थाय भवेयुः स्म पूर्तंमिष्टं तथाऽसतः ॥ (भा० ७।१५।२६)
दानं स्वघर्मो नियमो यमश्च शुतं च कर्माणि च सद्ब्रतानि ।
सर्वं मनो निग्रहलक्षणान्ताः परो हि योगो मनसः समाधि ॥ (भा० १।२३।४५)

दान १२ प्रकारके हैं—

- (१) कुँआ और सरोबर आदि निर्माण द्वारा जलदान।
- (२) उपयुक्त स्थानपर बृक्षारोपण द्वारा छाया और बायु दान।
- (३) उपयुक्त स्थान पर प्रदीप दान।
- (४) औषध दान
- (५) विद्यादान
- (६) अन्नदान
- (७) मार्ग दान
- (८) घाट दान
- (९) गृह दान
- (१०) द्रव्यदान
- (११) सुखाद्यका अप्रभाग दान
- (१२) कन्यादान

प्यासेको जल दान करना उचित है। प्यासा व्यक्ति घर पर उपरिथित होने पर उसे सुशीतल जल पिलाना चाहिए। साधारण लोगोंको जल पीनेके लिये कुँआ, तालाब, सरोबर आदि का निर्माण करना पुरुषकर्म है। उपयुक्त स्थान देखकर इष्टापूर्ते के इन कार्योंको करना चाहिए (ग)। जहाँ जलकी विशेष आवश्यकता हो, वहाँ पर कूपादि खुदवाना चाहिए। मीर्थस्थानोंमें अनेक लोगोंको जलकी आवश्यकता होती है। अतः वहाँ पर यदि उपयुक्त नदी आदि न हो तो वहाँ कूपादि निर्माण करवाना कर्तव्य है। मार्गके दोनों किनारे पर, नदीके तट पर तथा विश्राम

स्थानोंमें पीपल आदिके छायादार पेड़ लगाना चाहिए। अपने घरपर तथा अन्यान्य पवित्र स्थानोंमें तुलसी आदि बृक्ष लगाना चाहिए। उससे शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकारके उपकार होंगे। घाट पर, मार्गमें तथा विपत्तिकी संभावनावाले स्थानोंमें पथिकोंके उपकारके लिये प्रदीप दान करना चाहिए। वे प्रदीप बायुके भोकोसे बुझ न जाय, इसके लिये उन प्रदीपोंको काँचादिके आवरणोंमें रखनेसे विशेष उपकार होगा। जिस समय अनधिकार रहे, चन्द्र न रहे और बादल घिरे हो, तब रातमें आलोक देनेकी विधि है। जो जितना ही छाँच आलोक देंगे, वे उतना ही अधिक गुण्य संचय उठेंगे। आकाश प्रदीप के बल कार्तिक महिने महीने देना चाहिए, ऐसी बात नहीं। आकाश प्रदीप अधिक काँचा होनेपर उससे शोभा के अतिरिक्त कोई दूसरा उपकार नहीं होता।

श्रीषिदान दो प्रकारसे किया जा सकता है। एक तो रोगियोंके घर जाकर अथवा उनको अपने घर बुक्ता कर दवाएँ दी जा सकती हैं और दूसरे, एक निर्दिष्ट श्रीषधालय निर्माण कराकर वहाँ दवाएँ दी जा सकती हैं। जिसके लिये जो सुगम और अनुकूल हो, वे वही करेंगे। किसी छात्रको अपने घर पर अपने छयसे विद्या शिक्षा दी जा सकती है अथवा किसी विद्यालयमें भी अपने खर्चसे उसे पढ़ाया जा सकता है। बालक-बालिकाओंको विद्यादान करना एक प्रवान कर्तव्य कर्म है। अन्नदान दो प्रकारसे किया जा सकता है, एक अपने घर पर

(ग) इष्टापूर्ते न मायेवं यो यजेत् समाहितः।

सम्भते यदि सद्भर्त्ति मर्त्स्मृतिः साधुसेवया ॥ (भा० ११।१।४७)

अन्नदान किया जा सकता है। दूसरे, किसी सत्रपर वर्षभागरणको अन्नदान किया जा सकता है। अगम्य स्थानमें या दुर्गम स्थानमें मार्ग निर्माण करने को मार्गदान कहते हैं। पथर आदिके पथ स्थायी होनेके कारण अधिक पुण्यजनक हैं। नदी या सरोबर पर साधारण लोगोंके व्यवहारके लिये घाट निर्माण करनेको घाटदान कहते हैं। घाटके ऊपर विश्राम स्थान, बगीची, चाँदोवा और देव-मन्दिर आदिका निर्माण करनेसे अधिक पुण्य होता है। जो अर्थाभावके कारण गृह निर्माण कर रहनेमें असमर्थ हैं, उनको गृहदान करना पुण्य है। आवश्यकतानुसार किसी योग्यपात्रको अर्थ या द्रव्य देने से द्रव्यदान होता है। सुखाद्यका अग्रभाग किसी सुपात्रको देकर स्वयं प्रहण करना चाहिए। उपयुक्त और स्ववर्णके पात्रको अलंकारोंके सहित कन्यादान करनेको कन्यादान कहते हैं।

आतिथ्य दो प्रकारका होता है—व्यक्तिके प्रति और समाजके प्रति। गृहस्थ व्यक्तिके घर पर कोई अतिथि उपस्थित होने पर उसकी यथायोग्य येवा करनी चाहिए। शास्त्रमें ऐसा निर्देश है कि— रसोई हो जाने पर गृहस्थ अपने घरसे बाहर निकल कर भूखे व्यक्तिको तीन बार पुकारेंगे। यदि कोई आ जावे तो उसे भोजन कराकर स्वयं परिवारके साथ भोजन करेंगे। ढाई प्रहरके समय अर्थात् दिनके लगभग एक-डेढ़ बजे अतिथिको पुकारनेकी विधि है। आज्ञकल उतने समय तक अनाहार रहना सबके लिए संभव नहीं, इसलिये उससे पहले

भी भूखे व्यक्तिको पुकारनेसे भी कर्तव्य पूरा हो सकता है। भूखे व्यक्तिसे व्यवसायी भिजुकको नहीं समझना चाहिए। सामाजिक क्रियाओंके द्वारा सामाजिक आतिथ्य करना कर्तव्य है।

पवित्रता चार प्रकारकी होती है—(१) शौच, (२) पथ, घाट, गोगृह, बगीची, स्व-गृह और देव-मन्दिरोंका मार्जन, (३) जंगल साफ करना और (४) तीर्थयात्रा ।

शौच दो प्रकारका होता है—अन्तःशौच और बहिःशौच । चित्त शुद्धिको अन्तःशौच कहते हैं। निष्पाप और पुण्य-जनक क्रियाओंके द्वारा चित्त शुद्धि होती है। निष्पाप, लघुपाक और परिमित आहार और पान से भी चित्त शुद्धि होती है। मादक द्रव्योंका सेवन करनेवाले और दूसरे-दूसरे कुकमी व्यक्तियोंके द्वारा स्पर्श किये हुए भोजन-पान करनेसे चित्त अपवित्र हो जाता है। चित्त शुद्धिके जितने भी उपाय हैं, उनमें भगवत् स्मरण ही सर्वश्रेष्ठ है। पापी चित्तका शोधन करनेके लिये प्रायशिच्छत्तकी व्यवस्थाकी गयी है। उनमें से नांद्रामण आदि प्रायशिच्छत् कमोंसे पापीका पाप दूर होता है। परन्तु पापका मूल अर्थात् पाप वासना दूर नहीं होती। अनुतापरूप ज्ञान-प्रायशिच्छत्तसे पापवासना तो दूर होती है, परन्तु पापबीज नष्ट नहीं होता। यह पाप-बीज है—इंशबिमुखता। इंशबिमुखता ही जीवके संसार-भोगका कारण है। यह सो एक मात्र हरि-स्मरणके द्वारा ही दूर होती है (क)। प्रायशिच्छत्

(क) गुरुणांच लघुनांच गुरुनि च लघूनि च। प्रायशिच्छतानि पापानां जात्वोक्तानि महर्षिभिः ।

तंस्तान्यधानि पुयन्ते तपोदानव्रतादिभिः । नाधर्मजं तद्वृद्धयं तदपीशाद्विसेवया ॥

तत्त्वका विचार अत्यन्त अधिक है। उसके लिये दूसरे प्रन्थोंको देखनेकी आवश्यकता होगी। तीर्थ जलमें स्नान करनेसे, गंगा आदिमें स्नान करनेसे तथा देव दर्शनोंसे भी चित्तशुद्धि होती है। अपना शरीर, वस्त्र, गृह इत्यादि साफ-सुथरा और निर्मल रखनेका नाम बहिःशौच है। स्वच्छ जलमें स्नान, साफ-सुथरा, और पवित्र वस्त्र-धारण और सात्त्विक द्रव्योंका भोजन एवं पान—इन कार्योंसे शौच कार्य सम्पादित होता है। मक्का-मूँव और अपवित्र वस्तुओं को शरीरसे स्पर्श हो जाने पर जल द्वारा उस अज्ञको धो लेना उचित है। पथ, घाट, गोशाला, बगीची, अपना गृह और देव-प्रिण्डोंके गांड़न द्वारा पवित्रता अर्जन करनी चाहिये। अपने-अपने घर, घाट, पथ, गोशाला और चबूतरेको साक रखना सबका कर्त्तव्य है। इसके अतिरिक्त जग्म साधारणके व्यष्टिहारके लिये जो पथ, घाट बगीची और देवमन्दिर हों उन्हें भी सबके लिये साफ करना कर्त्तव्य है। यदि प्राम बढ़ा हो, तो प्रामके लोगोंको मिलकर स्वेच्छापूर्वक अथवा सम्राट (सरकार) की साहयतासे अर्थ संप्रद करके बैसे-बैसे सने-साधारणके कार्योंको सम्पन्न करना प्राम-बाधियोंके लिये पुरुषजनक कार्य है। अपने-अपने घरके निकट, जो जंगल या गन्दगी हो उसे स्वयं साफ रखना चाहिये। सर्व साधारणकी भूमिमें घन या जङ्गल हो जाने पर उसे पूर्व उपायसे साफ कर लेना चाहिये। तीर्थयात्रासे चित्त बहुत कुछ पवित्र होता है। यद्यपि तीर्थयात्राका मूल और चरम उद्देश्य साधुसंगकी प्राप्ति ही है तथापि तीर्थोंमें निवास करनेवाले सभी व्यक्ति अपनेको मन-दी-मन पवित्र समझते हैं, क्योंकि तीर्थ सेवन द्वारा उनकी

पाप प्रवृत्ति कुछ सीमा तक दूर हो गयी होती है।

महोत्सव

महोत्सव तीन प्रकारके होते हैं—

- (१) देवता पूजनके उपलद्धयमें।
- (२) विवाह, यज्ञ आदि बड़ी-बड़ी सांसारिक घटनाओंके उपलद्धयमें।
- (३) सर्व साधारणके मनोवनोद या आनन्दके लिये।

देवताओंकी पूजाके उपलद्धयमें जो उत्सव मनाये जाते हैं उनसे पुण्य होता है, इसमें सन्देहकी बात नहीं है। बहुतसे लोग एकत्र होकर परस्पर मिलते-जुलते हैं, भोजन करते-कराते हैं, सङ्गीतकी चर्चा करते हैं, दुखोन्दरिद्रको भोजन कराते हैं, विद्वान व्यक्तियोंको अर्थदान करते हैं, तथा समाज-उन्नतिके लिये जो कार्य करते हैं, वे सभी कार्य पुण्यजनक हैं। जो लोग इन कार्योंमें करनेमें समर्थ होनेपर भी उनसे धार्मिक रहते हैं, वे अपराधी हैं। विशेषतः जब ये उत्सवसमूह ईश्वरभाव मिश्रित हों तो उनका त्याग किसी प्रकार भी उचित नहीं है। सांसारिक घटनाएँ नानाप्रकार की हैं जिनके उपलद्धयमें उत्सव मनाये जाते हैं। जैसे—पुत्र-वन्ध्याका जन्म, अन्नप्राप्ति, संस्कार, विवाह, माता-पिताका आङ्गुष्ठ। इन अवसरों पर महोत्सव हो सकते हैं। यथासाध्य इनका अनुष्ठान करना कर्त्तव्य है। प्रामके लोग मिलकर सर्व-साधारणके कल्याण, मनोविनोद या आनन्दवर्द्धनके लिये जो देवपूजन, यज्ञ या मेला आदिका अनुष्ठान करते हैं उसमें भी योगदान करना कर्त्तव्य है।

जामाता-पूजनोत्सव, अरन्धनोत्सव, भगिनीद्वारा भातपूजा, नवान्नोत्सव और श्रीतलोत्सव आदि अनेक प्रकारके सामाजिक उत्सव हैं।

ब्रत

ब्रत तीन प्रकारके हैं—(१) शारीरिक, सामाजिक और (२) पारमार्थिक ब्रत। प्रातः स्नान, परिक्रमा, सांषांगदण्डवत्—ये व्यायाम सम्बन्धी शारीरिक-ब्रत हैं। कोई-कोई धातु, (कफ, पीत, बात) कुपित होने पर शारीर अस्वस्थ्य-सा लगता है। इसके लिये पीर्णमासी, अमावस्या, सोमवार, रविवार आदि ब्रतोंकी व्यवस्थाकी गयी है। उन निर्दिष्ट दिनोंको आहार और व्यवहारमें परिवर्तन करनेसे तथा सप्तवास आदिके द्वारा इन्द्रिय संयमपूर्वक ईश्वर पिन्नन करना ही योग्यकर है। आवश्यक दोनेपर उनका अवलम्बन करनेसे पुण्य होता है। उपनयन, चूडाकरण, विवाह आदि ब्रतसमूहकी सामाजिक वर्गविचारसे अधिकारानुसार व्यवस्था की गयी है। कोई-कोई ब्रत मानवमात्रके लिये भी बनाये गये हैं। विवाहकी व्यवस्था सभी वर्णोंमें है। एक पुरुष एक सर्वांगी कन्याके साथ विवाह करेगा। एक पत्नी-ब्रत ही कर्त्तव्य है। अर्थात् एक पत्नी रहते दूसरा विवाह नहीं करना चाहिये। सन्तान नहीं होने पर ही विशेष अवस्थामें ही एक पत्नीके रहते हुए भी दूसरे विवाहकी व्यवस्था दी गयी है। महाभारतमें जिस मासब्रतका उल्लेख है तथा वैसे-वैसे दूसरे जो ब्रत हैं, वे सभी पारमार्थिक ब्रत हैं। चौबीस एकादशी और जन्माष्टमी आदि छः जयन्ती-ब्रत—ये मास ब्रत हैं। केवल परमार्थ चेष्टा ही इन ब्रतोंका मूल उद्देश्य है। भक्तिविचारके प्रसंगमें इनका विस्तृत विचार होगा। श्रीहरिभक्तिविज्ञानमें इन ब्रतोंका विवरण है।

पशुपालन

पशुपालन भी पुण्यकार्य है। वह दो प्रकारका होता है—

(१) पशुओंका उन्नति-साधन (२) पशुपोषण और रक्षा।

सभी प्रकारके आवश्यक पशुओंकी उन्नतिके लिये प्रयत्न करना आवश्यक है। बिना पशुओंकी सहायतासे संसारका कार्य उत्तम रूपसे निर्वाह नहीं हो सकता। इसलिये पशुओंकी नश्लमें उनके बल और प्रकृतिमें जिससे उन्नति हो, उसके लिये प्रयत्न करना कर्त्तव्य है। उनको किसी-किसी विशेष अवस्थामें रखनेसे अथवा उनके उपयुक्त ऋच-पुरुष-संयोगद्वारा उनकी नश्लकी उन्नति होती है। समस्त प्रकारके पशुओंमें गाय जातिकी उन्नति पर सर्वाधिक ध्यान देना कर्त्तव्य है। उनकी सहायतासे कृषि और परिवहन आदिके कार्योंमें अत्यन्त सहायता मिलती है। उत्तम कोटिके बलवान और सुन्दर साँड़ों द्वारा गायों की सन्तान उत्पत्ति करना कर्त्तव्य है। इसी अभिप्रायसे मृत व्यक्तियोंके आद्वके अवसर पर छोटे-छोटे सुन्दर बछड़ोंको दागकर कर्मोंसे मुक्त कर साँड़के रूपमें छोड़ दिया जाता है। दागे हुए मुक्त साँड़ स्वतन्त्रभावसे विचरण करते-करते अत्यन्त बलवान और वृहदाकार हो जाते हैं तथा बलवान गो जाति के जनक होने योग्य बन जाते हैं। पशुगण जिस प्रकार संसारका उपकार करते हैं, उन्हें उसी प्रकार आहार और गृहकी व्यवस्था द्वारा पालन-पोषण करना कर्त्तव्य है। गो-पोषण और गोरक्षा-कार्य

भारतवर्षका एक विशेष पुण्यजनक कार्य माना गया है।

जगद् वृद्धिके कार्य

जगद्वृद्धि चार प्रकारसे होता है—

- (१) वैष्णव विवाह द्वारा सन्तान उत्पत्तिकरण।
- (२) उत्पन्न सन्तानोंको रक्षा एवं पालन-पोषण।
- (३) सन्तानको संसारके योग्य बनाना।
- (४) सन्तानको परमार्थकी शिक्षा देना।

उपयुक्त आयुमें उपयुक्त पात्रीसे विवाह करके शरीर और चित्तकी स्वास्थ्य-रक्षाको विधिके अनुसार परस्पर प्रीतिपूर्वक संसार निर्वाह करेंगे (क)।

अमर्यापी भगवानकी इच्छासे पुत्र और दूसरा पैदा

होंगी। उत्पन्न सन्तानोंका यत्नपूर्वक पालन-पोषण और रक्षाकी व्यवस्था करनी चाहिए। उपयुक्त आयुमें विद्या शिक्षा एवं अन्यान्य कार्योंकी शिक्षा देनी चाहिए। क्रमशः कुछ और आयु होने पर उनको अर्थोपार्जनकी भी शिक्षा देनी चाहिए। उपयुक्त आयु होने पर उनका विवाह कर सद्गृहस्थ बनाने के लिये प्रयत्न करना चाहिए। सन्तानोंको उपयुक्त आयुमें शारीरिक विधि, धर्म नीति और परमार्थ तत्त्वकी शिक्षा देनी चाहिए, इन कार्योंमें स्वयं बैराग्यकी शिक्षा प्रदण करनी चाहिए।

(क्रमशः)

—३५विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

(क) गृहार्थी सहस्री भार्यामुद्देह जुगुप्सिताम् । यदीयसीन्तु वयसा या सवणामिनुक्तमात् ॥

(भा० १ । १७।३६)

(क) यहचक्ष्योपपन्नेन शुक्लेनोपाजितेन वा । धनेनापीडयन् भृत्यान्यायेनेवाहरेत् क्लून् ॥

कुडु'वेषु न सज्जेत् न प्रमादेत् कुडुम्यति । विप्रिच्छत्त्वरं पश्येददृष्टमपि हृष्टवत् ॥

पुत्रदारात्तबन्धुनां सञ्ज्ञमः पात्वसञ्ज्ञमः । न गृहैरनुबध्येत् निर्ममो निरहंकृतः ॥

कर्मभिग्यं हमेधीयैरिष्टा मामेव भक्तिमात् । तिष्ठेत् वनं बोपविशेत् प्रजावान् वा परिव्रजेत् ॥

(भा० १।१७।५१-५५)

ॐ श्रीश्रीगुरुगौराह्नौ जयतः ॥

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ
तेघस्पिंडा, पो० नवद्वीप,
(नदिया)

साधर सम्भाषणपूर्वक निवेदन—

कल्पियुग-पावनावतारी स्वयं भगवान् श्रीश्रीशचीनन्दन गौरहरि की निखिल भुवन-मङ्गलमयी आविर्भाव तिथि-पूजा (फाल्गुनी पूर्णिमा) के उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति के उद्योग से उपरोक्त ठिकाने पर आगामी २८ फाल्गुन, १२ मार्च शुक्रवारसे ४ चैत्र, १८ मार्च, बुहसप्तिवार पर्यन्त सप्ताहकालात्यापी एक विराट महोत्सव का आनुष्ठान होगा। इस महदनुष्ठानमें प्रतिदिन प्रबन्धन, कीर्तन, वक्तुता, इष्ट-गौष्ठा, आविस्मद्द-सेवा, महाप्रसाद वितरण प्रभूति विविध भक्ताभ्यास आजित होंगे।

इस उपलक्ष्य में श्रीश्रीनवद्वीपधाम के अन्तर्गत नौ छोरों का दर्शन तथा उत्तरधान-जातात्म-कीर्तन करने हूप सोलह-कोशा की परिकमा होगी। गत बष्ट की तरह इस पर्व भी श्रीनृसिंहपल्ली, मामगाढ़ी एवं श्रीधाम मायापुरमें भव्याह भोगराग और प्रसाद सेवाके पश्चात् संध्याको श्रीनवद्वीपमें लौट आने की सुव्यवस्था की गई है।

घर्मप्राण सज्जन-वृन्द उक्त भक्ति-अनुष्ठान में सवाधव योगदान कर समिति के सदरयवर्ग को परमानन्दित एवं उत्साहित करेंगे। इस महदनुष्ठान का गुरुत्व उपलक्ष्य कर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समिति के सेवाकार्य में सदानुभूति प्रदर्शन कर अनुगृहीत करेंगे। इति १६ दिसम्बर, १९६४।

शुद्धभक्त कृपालेश-प्रार्थी—

“सभ्यवृद्द”

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

द्रष्टव्य—विशेष विवरण के लिये अथवा साहाय्य (दानादि) देने के लिये त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्ति-प्रज्ञान केशव महाराजके निकट उपर्युक्त ठिकाने पर लिखें या भेजें।